REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 6 | MARCH - 2018

हिन्दी कथा साहित्य में जातिगत संकीर्णता

डॉ. अरजण वी. नंदाणीया
एम.ए., पीएच.डी.

सारांश

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में चार वर्ण थे – ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। प्रारम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार थी। कालान्तर में यह जन्मानुसार हो गयी और चतुर्थ वर्ग को सबसे निचले पायदान पर होने के कारण शोषण व अमानुषिक व्यवहार का शिकार बनना पड़ा। जब व्यक्ति की पहचान उसकी शिक्षा या निपुणता से नहीं बल्कि जाति के आधार पर होने लगी तो शूद्र समझी जाने वाली जातियाँ पद दलित की जाने लगीं। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में सर्वप्रथम मध्यकालीन सन्तों के काव्य में जातिगत संकीर्णता की सशक्त स्वर में भर्त्सना दिखायी देती है। नाम देव, कबीर, रैदास आदि सन्त कवि जो निम्न जातियों से आये थे, जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। उनके साहित्य में घट–घट में एक ही परमतत्व का दर्शन करने वाली भारतीय संस्कृति का जयघोष है। आधुनिक काल में साहित्यकारों ने जातिगत रूढ़ियों के मूलोच्छेद के लिये प्रतिबद्वता व्यक्त की। उत्तर आधुनिक युग में दलितों में अस्तित्व बोध की पीड़ा को लेकर प्रस्फुटित स्फुलिंग दहकता अंगारा बन जड़ व्यवस्था को दग्ध करने को मचल उठा। दलित साहित्यकारों ने आप बीती की अभिव्यक्ति की। मोहनदास नैमिशराय, सूरज पाल चौहान, ओमप्रकाश वाल्मीकि, शरण कुमार लिम्बाले, जयप्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह बेचैन, रजतरानी, सुदेश तनवीर ने साहित्य की विविध विधाओं में शोषण और अपमान की प्रतिक्रिया की दर्द भरी और रोषपूर्ण अभिव्यक्ति की। दलित पत्रिकाओं (शंबूक, युद्वरत, आम आदमी) का प्रकाशन हुआ। दलित चेतना के आधार पर हिन्दी साहित्य का पुनर्पाठ किया गया और 1914 में सरस्वती में प्रकाशित हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' को हिन्दी की प्रथम दलित रचना के रूप में स्वीकृति प्राप्त हुई। आज दलित साहित्यकार परम्परागत काव्यशास्त्र और सौन्दर्य बोध के स्थान पर साहित्य की नवीन कसौटी की खोज कर रहें हैं तथा अफ्रीका की अश्वेत जातियों के साहित्य से प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। इन साहित्यकारों ने काव्यशास्त्रीय मान्यताओं को नकारा है तथा अन्याय का विरोध करने के कारण इनकी भाषा चुटीली एवं व्यंग्यात्मक है। इस साहित्य के द्वारा दलित अस्मिता को सफलता पूर्व क रेखांकित किया गया है, किन्तु यदि जातिवादी क्रोध प्रतिहिंसा एवं घृणा के रूप में सामने आती हैं, तो चिन्तनीय है।

निःसंदेह जातिवाद की समस्या सम्पूर्ण समाज व राष्ट्र की समस्या है। आज दलित विमर्श को संवैधानिक शक्ति प्राप्त है और दलित साहित्य में जड़ रूढ़िवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्ति निहित है। सदियों से दलित, शोषित अपनाअधिकार प्राप्त कर सकें। यदि प्रकृति अपने संसाधनों के अवदान में भेद नहीं करती तो समाज में भेदभाव क्यों?

मुख्य शब्द :दलित, दलित विमर्श, गैर दलित, वर्ण व्यवस्था.

प्रस्तावना

'दलित' शब्द का अर्थ है, दबाया गया, कुचला गया, उत्पीड़ित। भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में 'दलित' सम्बोधन वर्ण व्यवस्था के निचले पायदान पर होने के कारण शताब्दियों से शोषण, दमन व सामाजिक असमानता के शिकार असवर्ण वर्ग के लिए किया जाता है। जब वर्ण व्यवस्था कर्मानुसार न होकर जन्मानुसार हो गयी तो शूद्र समझी जाने वाली जातियों को शिक्षा व सामाजिक न्याय से वंचित होना पड़ा और कालान्तर में इनकी अस्मिता विलीन हो गयी।

आधुनिक काल में भारतीय नव जागरण के साथ निम्नवर्ण की दुरावस्था की ओर सुधारकों का ध्यान आकृष्ट हुआ। इस सन्दर्भ में एक ओर तो अस्पृश्यता एवं वर्णगत असमानता को दूर करने हेतु राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी प्रभृति विभूतियों ने –समाज सुधार' के प्रयत्न किये तो दूसरी ओर ज्योति बा फुले, पेरियार, नारायण गुरू तथा डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जैसे दलित वर्ग की विभूतियों ने 'परिवर्तन' का स्वर बुलन्द किया। उत्तर आधुनिक दलित विमर्श ने हाशिये के वर्गों को केन्द्र में लाने के लिये 'व्यवस्था परिवर्तन' पर बल दिया और बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य में दलित–विमर्श तीव्रता से उभरा।

दलित–विमर्श का प्रारम्भ मराठी साहित्य से हुआ, तदुपरान्त हिन्दी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, तेलगू, व तमिल में भी दलितों द्वारा रचित साहित्य के स्वर सुनायी देने लगे। हिन्दी में ओम प्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, डॉ0 ए0एन0सिंह, कँवल भारती, डॉ0धर्मवीर प्रभृति अनेक दलित साहित्यकारों ने दलित साहित्य की विशेष स्थिति और आवश्यकताओं को रेखांकित करते हुये प्रतिपादित किया है कि दलितों के द्वारा दलितों के जीवन पर लिखा गया साहित्य दलित साहित्य है। किसी गैर दलित या सवर्ण द्वारा लिखे गये दलित सम्बन्धी साहित्य को वे दलित साहित्य मानने को तैयार नहीं है। उनकी दृष्टि में ऐसा साहित्य सहानुभूति या दया का साहित्य है, चेतना का नहीं वह चाहे प्रेमचन्द्र या निराला का ही दलित साहित्य क्यों न हो?

प्रेम कुमार मणि के अनुसार – ''दलितों के द्वारा दलितों के लिये लिखा जा रहा साहित्य दलित–साहित्य है।''1

दलित साहित्य के सन्दर्भ में आलोचकों के दो मत हैं – एक वर्ग दलितों की नियति पर रचित साहित्य को दलित साहित्य मानता है, चाहे उसका लेखक सवर्ण ही क्यों न हो? इसके विपरीत कुछ ले खक दलितों द्वारा दलितों के लिये लिखित साहित्य को ही दलित साहित्य की संज्ञा देते हैं। इन साहित्यकारों का मानना है कि सवर्णों द्वारा जो यथार्थ भोगा ही नहीं गया उसकी प्रमाणिक अनुभूति को वह कैसे अभिव्यक्त कर सकता है। मोहनदास नैमिशराय का कहना है कि ''दलित साहित्य दलितों का ही हो सकता है, क्योंकि उन्होंने जो नारकीय उपेक्षापूर्ण जीवन भोगा है वह कल्पना की वस्तु नहीं वह उनका भोगा हुआ यथार्थ और जख्मी लोगों का दस्तावेज है।''2

दलित साहित्य के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुये डॉ0 जयप्रकाश कर्दम कहते हैं, ''दलितों द्वारा लिखा गया ऐसा साहित्य दलित साहित्य है जो उन्हें अपना दमन और शोषण करने वालों के विरूद्ध संघर्ष के लिये प्रेरित करे। उनके अन्दर सम्मान और स्वाभिमान से जीने की भावना पैदा करे। भाग्य, भगवान, पुनर्जन्म, परलोक आदि में विश्वास की बजाय वैज्ञानिक सोच का विकास करें। वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था सहित उन तमाम शोषण मूलक व्यवस्थाओं का विरोध करने की सीख दे जो असमानता, अन्याय और अमानवीयता की जनक या पोषक है।''3

मराठी लेखक डॉ. खांडेकर दलित–साहित्य का मूल स्वर हिन्दू धर्म पर आधारित परम्पराओं, रूढ़ियों और विचारों के विरूद्ध मानते हुये लिखते हैं :– ''दलित साहित्य केवल प्रतिकार या प्रतिशोध नहीं है या केवल नकार या निषेध नहीं हैं, बल्कि जो कुछ मंगल और शुभ है उन सबकी निर्मित के लिये यह पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है। यह विद्रोह हिन्दू धर्म पर आधारित परम्पराओं, रूढ़ियों और विचारों से है और उस समाज के विरूद्ध जिसने उन्हें पद दलित, शूद्र और अस्पृश्य नाम देकर अन्याय, अत्याचारों के द्वारा मन में छिपी बर्बरता का पूरा–पूरा परिचय दिया। यह कहना उचित होगा कि 'विद्रोह' ही दलित साहित्य का मूल धर्म और उसकी विशिष्टता है।''4

हिन्दी साहित्य में दलित–विमर्श मध्यकाल में भक्ति आन्दोलन के साथ आरम्भ हुआ था। जब जातिगत संकीर्णता अपने चरम पर पहुँच गयी तो निम्नवर्ण का आक्रोश उभरा। मानव मात्र में एक ही परमतत्व के दर्शन करने वाली भारतीय संस्कृति में जातिगत कट्टरता का मूलोच्छेद करने के लिये जो सन्त आगे बढ़े वे उन निम्न जातियों से आये थे, जिन्होंने अत्याचार को सहन किया था इसलिये वे जातिवादी व्यवस्था पर तीव्र कटाक्षेप करते हैं। नामदेव, कबीर और रविदास जैसे संतों ने दलितों की पीड़ा को अत्यन्त मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया है। वर्ण व्यवस्था पर व्यं ग्य करते हुये कबीर दास पूछते हैं।

''तुम कत बामन हम कत सूद।
हम कत लोहू तुम कत दूध''।।

इन सन्तों का स्वप्न था समता मूलक समाज की स्थापना। इसके साथ ही मध्यकाल के अन्य सन्त जो दलित वर्ग से नहीं आये थे– ने भी दलितों के शोषण मुक्ति के लिये प्रतिबद्धता व्यक्त की है।

आधुनिक काल के अन्तिम दो दशकों के दलित साहित्यकार दलित साहित्य की परम्परा कबीर, रैदास, वाल्मीकि या व्यास से न मानकर आधुनिक चेतना जनित मानते हैं। इस सम्बन्ध में श्योराज सिंह बेचैन लिखते हैं । ''दलित साहित्य का सम्बन्ध कबीर, रैदास जैसे दलितों के साहित्य से नहीं है और न व्यास और वाल्मीकि के साहित्य से। कबीर और रैदास उन्हें ईश्वर के सहारे छोड़ देते हैं और वाल्मीकि व व्यास तो ब्राह्मण वाद को ही मजबूत करते हैं। आज का दलित–साहित्यकार अपने अनुभव से अपना रास्ता निकालने का हिमायती है। उसमें क्रोध, नफरत, नकार और आत्म पहचान का तत्व प्रमुख है। वह इतिहास की धारा में बहने के लिये नहीं, उसकी ज्यादतियों के विरूद्ध संघर्ष करने और उसे पलटने के लिये कटिबद्ध है। वह बाबा साहब अम्बेडकर और ज्योति बा फुले का अनुयायी है।''5

इस प्रकार दलित साहित्यकार दलित कथा साहित्य की परम्परा प्रे मचन्द से नहीं मानते। इस सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह सत्य है कि यथार्थ के अंगारे को चिमटे से पकड़ने और उसको हाथ में छूने का अनुभव अलग–अलग होता है, फिर भी हिन्दी कथा साहित्य में गैर दलित लेखकों द्वारा दलितों की समस्याओं को उठाने की सुदीर्घ परम्परा रही है। यद्यपि उनका मुख्य स्वर दलित लेखन नहीं रहा है तथापि इस परम्परा में उनके योगदान को नकारा नहीं जा सकता है।

हिन्दी साहित्य में दलितों के जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाने में सर्वप्रथम प्रेमचन्द का नाम आता है। दलित जीवन से जुड़ी प्रेमचन्द की कई कहानियाँ हैं । कुछ कहानियों में दलितों की समस्यायें सीधे–सीधे उठायी गयी हैं। इनमें मुख्य पात्र दलित हैं। प्रथम प्रकार की कहानियों में दलित–प्रश्न है, जबकि द्वितीय प्रकार की कहानियाँ दलित जीवन से सम्बन्धित हैं। प्रेमचन्द की कहानियों में दलित पात्र व जीवन किसी–न–किसी रूप में आदि से अन्त तक आया है।

दलित–प्रश्न से सम्बन्धित प्रेमचन्द की कहानियों में दो प्रकार के दलित पात्र हैं। एक वे जो ब्राह्मण वादी मान्यताओं में रचे–बसे हैं तथा दूसरे वे जो इसका प्रतिरोध करते हैं। दलितों पर केन्द्रित प्रेमचन्द की चार कहानियाँ उल्लेख्य हैं– 'मन्दिर', 'सद्गति', 'ठाकुर का कुआँ', और 'दूध का दाम'। 'सद्गति' का दुःखी एवं 'मन्दिर' की सुखिया ब्राह्मणवादी मान्यताओं को स्वीकार कर चुके हैं। सदियों से चली आ रही शोषण मूलक मान्यताएँ इनके लिये स्वाभाविक बन गयी लगती हैं। 'सद्गति' के 'दुखी' को इन मान्यताओं में विश्वास की कैसी त्रासद सद्गति मिलती है ? इस सद्गति से व्यवस्था की क्रूरता उजागर होती है। 'मंदिर' की सुखिया मंदिर में घुसने के लिये चोरी–चुपके प्रतिरोध करती है। धर्म के ठेकेदार सुखिया की पिटाई करते हैं व उसके बेटे की हत्या कर देते हैं। यह कहानी गैर दलितों की अमानवीयता, क्रूरता एवं दलितों के शोषण के दुष्चक्र की जटिलता को अभिव्यक्त करती है। 'ठाकुर का कुआँ ' कहानी में ब्राह्मणवादी व्यवस्था में दलितों के छूआछूत के दंश का चित्रण है साथ ही दलित स्त्रियों की दशा भी चित्रित है जहाँ उन्हें शारीरिक व भावनात्मक शोषण का शिकार होना पड़ता है। गंगी सोचती है ''अभी इस ठाकुर ने तो उस दिन बेचारे गड़रिये की भेड़ चुरा ली थी और बाद में मारकर खा गया। इन्हीं पण्डित जी के घर तो बारहोंमास जुआँ होता है। यही साहू जी तो घी मे तेल मिलाकर बेचते हैं। काम करा लेते हैं मजदूरी देते नानी मरती है। किस बात में हैं हमसे ऊँचे। हाँ! मुँह से

हमसे ऊँचे है। हम गली–गली चिल्लाते नहीं कि हम ऊँचे हैं, हम ऊँचे हैं। कभी गांव आ जाती हूँ तो रसभरी आँखों से देखने लगते हैं। जैसे सबकी छाती पर साँप लोटने लगता है, परन्तु घमण्ड यह कि हम ऊँचे हैं।''6

'दूध का दाम' कहानी में प्रेमचन्द जी ने गैर दलितों की धूर्तता एवं पाखण्ड के चक्र में फँसे दलित बालक के करूण यथार्थ का चित्रण किया है जो हर बार घोड़ा बनने से इसलिये इन्कार करता है, क्योंकि वह सवर्णों की चालाकी समझ चुका है। इस कहानी में गैर दलितों की अवसरवादिता अभिव्यक्त हुई है। जमीदार का बेटा मंगल की मां का स्तनपान करके बड़ा हुआ है, पर बड़ा होने पर वही मंगल भंगी जाति का होने के कारण अस्पृश्य है। दूध का दाम उसे कुत्ते की भांति जूठन देकर चुकाया जाता है।

प्रेमचन्द ने 'कर्मभूमि' नामक उपन्यास में दलितों के मन्दिर–प्रवेश का समर्थन किया है। वे दलितों के प्रति भेद–भाव का दोषी समाज को मानते हुए दलितों में क्रान्ति उत्पन्न करना चाहते थे। उन्होंने भरपूर प्रयत्न किया कि दलित अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हों। 'कर्मभूमि' में डा. शान्तिकुमार कहते हैं– ''क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी का बीड़ा लेकर आये हो? तुम तन–मन से दूसरों की सेवा करते हो, पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज में कोई स्थान नहीं। तुम बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज खड़ा है, पर तुम अछूत हो। तुम मन्दिरों में नहीं जा सकते। ऐसी अनीति इस अभागे देश के सिवा और कहाँ हो सकती है? क्या तुम सदैव इसी भाँति पतित और दलित बने रहना चाहते हो?'7

प्रेमचन्द के कथा साहित्य में दलितों के उत्पीड़न, अत्याचार, विषमता व शोषण के जो चित्र प्रस्तुत हैं, वे भोगे हुए यथार्थ के दलित लेखकों की कहानियों की बराबरी करते हैं। प्रेमचन्द ने वर्ण विभक्त समाज में दीन–हीन दलितों का पक्ष लेकर अपनी जनचेतना और जनपक्षधरता का स्वाभाविक परिचय दिया है। वस्तुतः प्रेमचन्द को नकार कर जाति को श्रेष्ठता का मानक बनाकर एक नये तरह के ब्राह्मणवाद को गढ़ा जा रहा है। आज प्रेमचन्द को नकारने का उद्देश्य यह जान पड़ता है कि दलित लेखक यह सिद्ध करना चाहते हैं कि बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दो दशकों में दलित चेतना अवतरित हुई। बल्कि, सत्य यह है कि सवर्ण लेखकों द्वारा निरन्तर न केवल दलित चेतना को रेखांकित किया गया अपितु उसकी मुखर वकालत की गयी। दलित आन्दोलन को सक्रिय बनाने, दलितों में अस्मिता की पहचान को जाग्रत करने के लिये प्रेमचन्द ने अपने कथा–साहित्य के माध्यम से जो स्फुलिंग छोड़ा था वह आज दलित चेतना के अंगारे के रूप में दहक रहा है।

प्रेमचन्दोत्तर युग में दलित–विमर्श की दृष्टि से यशपाल के उपन्यास 'दिव्या' का नाम लिखा जा सकता है। यद्यपि यशपाल मार्क्सवादी चिन्तक हैं। वे उन असमानताओं की खाइयों को पाटना चाहते हैं, जो मानव को खण्ड–खण्ड विभाजित करती हैं इसलिये वे जाति, धर्म, वर्ग वैषम्य सभी का विरोध करते हैं। धर्म की झूठी व्यवस्था आत्मा, ईश्वर, परलोक, स्वर्ग, नरक, कर्मफल आदि सभी को नकारते हैं जो मनुष्य को हीन बनाती है। वे वर्णाश्रम का विरोध करते हैं। 'दिव्या' के प्रथम अनुच्छेद में ही दास पुत्र पृथुसेन के माध्यम से वर्णगत वैषम्य के प्रति विक्षोभ व्यक्त करते हुए कहते हैं– ''जन्म का अपराध? यदि वह अपराध है तो उसका मार्जन किस प्रकार सम्भव है? शस्त्र की शक्ति, धन की शक्ति, विद्या की शक्ति, कोई जन्म को परिवर्तित नहीं कर सकती है। कोई भी उपाय जन्म के अपराध का मार्जन नही कर सकता। जन्म के अन्याय का प्रतिकार क्या मनुष्य देव से लें?....या उन लोगों से जिन्होंने जन्म के असत्य अधिकार की व्यवस्था निर्धारित की है? हीन कहे जाने वाले कुल में मेरा जन्म अपराध है अथवा यह द्विज कुल में जन्में अपदार्थ लोगों का अहंकार मात्र।

अमृतलाल नगर ने 'नाच्यों बहुत गोपाल' में सामाजिक विषमता के साथ संवाद करता एवं अस्तित्व के लिये संघर्षरत दलित मध्य वर्ग चित्रित है। उनका मानना है कि दलित (भंगी) समाज के शोषण और दमन का कारण समाज निर्मित व्यवस्था है। समकालीन हिन्दी साहित्य में दलित सन्दर्भों की दृष्टि से शैलेश मटियानी का नाम उल्लेखनीय है। 'अहिंसा', 'जुलूस', 'हारा हुआ', 'संगीत भरी संध्या', 'माँ तुम आओ', 'अलाप', 'लाटी', 'भँवरे की जात', 'आँधी से आँधी तक', 'परिवर्तन', 'आक्रोश', 'भय', 'आवरण', 'दो दुखों का एक सुख', ' चुनाव', 'प्रेममुक्ति', 'चिट्ठी के चार अक्षर', 'वृत्ति', 'सतजुगिया', 'गोपु ली', 'गफूरन', 'गृहस्थी', 'इब्बूमंगल', 'प्यास', 'शरण्य की ओर आदि कहानियाँ दलित जीवन सन्दर्भों से सम्बन्धित हैं। इन कहानियों में दलित वर्ग से सम्बन्धित चरित्र मुख्यतः तीन रूपों में चित्रित हुए हैं। पहला वह जो भारतीय समाज की अमानवीयता से लाचार होकर समझौता करता दिखाई देता है। दूसरा वह जो समाज व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो व्यक्त करता है, किन्तु उसका आक्रोश इतना दबा होता है कि अंततः टूटकर समझौता की विवशता को झेलता है। तीसरा वह जो अपनी मान मर्यादा एवं हितों के लिये समाज व्यवस्था से सीधे टकराता है।

'माँ तुम आओ' कहानी में गैर दलितों की अमानवीयता और दलित वर्ग से सम्बद्ध चरित्रों को दलित होने के बोध के स्तरों से गुजरते हुए चित्रित किया गया है। इस कहानी से दलित वर्ग से सम्बद्ध 'बच्चू' बाल चरित्र और बड़ी माँ नारी चरित्र को गैर दलित चरित्र माधो काका दलित होने के त्रासद बोध के धरातल पर ले जाता हुआ चित्रित हुआ है। 'हत्यारे' कहानी में दलितों की भावनाओं को भड़काकर राजनीति करने वाले नेताओं की कुत्सित चेष्टायें अनावृत हुई हैं। इस कहानी में हरफल चन्द्र अपनी बिरादरी को क्रान्ति का आह्वान करता चित्रित हुआ है, ''तो मैं आप लोगों से कह रहा था कि हम हरिजन भाइयों पर जोर जुल्म की हुकूमत चलाने के वे नादिरशाही जमाने गुजर चुके, जो हमारे बाप–दादाओं के पीठों पर अपने जालिम निशान छोड़ गये हैं।........ अब वक्त आ गया है कि हम हरिजन दुनियाँ में अपने नामोनिशान छोड़ जायें।''9

इस प्रकार शैलेश मटियानी के साहित्य में भारतीय समाज के हाशिये में रहे वर्षों से उपेक्षित एवं शोषित दलित–जीवन सन्दर्भों का पर्याप्त चित्रण हुआ।

'धरती धन न अपना', 'नरक कुण्ड में वास', (जगदीश चन्द्र), एक टुकड़ा इतिहास (गोपाल उपाध्याय), परिशिष्ट (गिरिराज किशोर), उत्तर गाथा (मधुकर सिंह), दण्ड विधान (मुद्रा राक्षस), बंधुआ रामदास (नीलकांत), महाभोज (मन्नू भण्डारी), गगन घटा घहरानी (मनमोहन पाठक), पाथर घाटी का शोर (पुन्नी सिंह) आदि उपन्यासों में दलित जीवन पर जो प्रकाश डाला गया है वह अनुभूत यथार्थ लिखने वाले दलित लेखकों के साहित्य की बराबरी करता है। इन उपन्यासों में सदियों से सताये, उपेक्षित, शोषित और दलित लोगों का जीवन अंकित करते समय न केवल सामाजिक जीवन की जड़ता, क्रूरता और अमानवीयता को रेखांकित किया गया है, बल्कि दलितों में अपने हक के लिये संघर्ष करने और सबके समान जीने की भावना को प्रेरित किया गया है। दलित जीवन का पीड़ा बोध और उनका सामाजिक त्रासदिक भयावह यथार्थ इसमें अभिव्यक्ति पाता है। साथ ही दलितों की साहित्य धारा इस चेतना के साथ जुड़कर विकास का मार्ग तलाशे तो इससे एक स्वस्थ दृष्टिकोण का निर्माण होगा और समाज की वास्तविक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा।

आठवें–नवें दशक में कविता, कहानी, उपन्यास, आत्मकथा आदि के माध्यम से दलित चेतना की प्रखर अभिव्यक्ति हुई है। इस समय हिन्दी दलित–लेखन की दृष्टि से एक ओर तो क्रान्ति का स्वर बुलन्द हुआ तो दूसरी ओर दलित–लेखन सहजता की ओर भी बढ़ा है। हिन्दी में पहली दलित आत्मकथा 'मैं भंगी हूँ' डॉ0भगवानदास ने लिखी। इसके पश्चात् जूठन (ओम प्रकाश वाल्मीकि), दोहरा अभिशाप (कौशल्या बैंसंत्री) तिरस्कृत (सूरजपाल चौहान), अपने–अपने पिंजरे (मोहनदास नैमिशराय) आदि आत्मकथायें पठनीय एवं विचारोत्तेजक बन पड़ी हैं। इसके अतिरिक्त बिहार के रमाशंकर आर्य की 'घुटन' बिहार के किसी दलित लेखक की पहली आत्मकथा है, जिसमें एक ओर जहाँ सवर्णों के द्वारा एक दलित के प्रताड़ित होने की कथा है, वहीं दूसरी ओर दलितों एवं पिछड़ों द्वारा प्रताड़ित होने की कथा है जो आत्मकथाकार के लिये मानसिक परेशानी का सबसे बड़ा सबब बनता है।

हिन्दी कथा साहित्य में दलित चेतना की दृष्टि से वरिष्ठ कथाकार विजय का सद्यः प्रकाशित कथा संग्रह 'जझद' महत्वपूर्ण है। 'कद' शीर्षक कहानी में वे कहते हैं । ''छोटी–छोटी लड़ाइयाँ किश्तों में लड़ी जा रही हैं मगर उनसे कोई फतह हासिल होने की उम्मीद नहीं है, इसीलिये गुनाहगार आज भी उतने ही आजाद और ताकतवर हैं जितने पहले थे। 'वापसी', 'टिनोपाल बेबी' 'लाक्षागृह', आदि कहानियों में कथाकार लगातार दलित व आदिवासी महिलाओं के जीवन की विसंगतियों पर विमर्श करता हुआ आगे बढ़ता है। 'अभिमन्यु की हत्या' कहानी में प्रतिभाशाली छात्र रमाकान्त के शोषण की कथा है।

दलित–साहित्य भोगे हु ए यथार्थ का धधकता हुआ प्रामाणिक दस्तावेज है। वह अनुभव की आँच पर तपकर निकला हुआ सत्य है। दलित साहित्य में दलितों के तमाम कष्टों, यातनाओं, उपेक्षाओं, प्रताड़नाओं के भोगे हुये यथार्थ के आधार पर प्रामाणिक एवं मार्मिक अभिव्यक्ति मिली है। दलितों का मानना है कि उनका उत्थान केवल संघर्ष के द्वारा होगा। कहीं–कहीं दलित साहित्य दलित राजनीति से प्रभावित जान पड़ता है। ऐसी स्थिति में दलित साहित्य का उद्देश्य उत्तर आधुनिक विमर्श के स्थान पर उत्तर हिन्दू विमर्श के रूप में दिखायी देता है। फलस्वरूप असन्तोष एवं आक्रोश की परिणति अजातिवादी क्रोध, प्रतिहिंसा और घृणा के रूप में भी सामने आयी है, जो निश्चित रूप से चिन्तनीय है, किन्तु अब देखा जा रहा है कि दलित–साहित्य भी सहजता की ओर बढ़ रहा है। हिन्दी में दलित लेखक ओमप्रकाश वाल्मीकि का कथा साहित्य इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। वे दलित समुदाय की पीड़ा और आक्रोश का बेबाक चित्रण करते हैं लेकिन उसकी आड़ में किसी 'दलित धर्म' या 'दलितवाद' का प्रस्ताव नहीं करते। दलित समुदाय के भीतर उनकी परम्पराओं को आलोचक की

दृष्टि से देखते है और जहाँ आवश्यक होता है, उसकी खामियों की ओर उँगली उठाते हैं। 'हत्यारे' कहानी में उन्होनें दलितों में व्याप्त अन्धविश्वास को बखूबी रेखांकित किया है। अस्मितावाद से शुरू कर सार्वभौम मनुष्यता तक पहुँचना उनका गन्तव्य है। 'सलाम', 'खानाबदोश', ब्रह्मास्त्र' कहानियों में द्विज पात्र दलितों का साथ देना चाहते हैं लेकिन आधी दूर चलकर ठहर जाते हैं। अभी उन्हें वैचारिक व भावात्मक रूप से पुख्ता होने में समय लगेगा। 'घुसपैठिया' कहानी में लेखक ने मेडिकल कॉलेज में दलित छात्र की दशा को रेखांकित किया है जहाँ वह शोषण के कारण आत्महत्या कर लेता है, जिसे लेखक हत्या के रूप में देखता है। इनकी कहानियों में दलित पात्रों में हीनता बोध गहराई से पैठा हुआ है, वे कई बार जाति छुपाकर जीवन यापन करते हैं। ''मैं ब्राह्मण नहीं हूँ' का मोहनलाल शर्मा अपनी जाति छुपाकर रह रहा है उसके बेटे की शादी गुलजारी लाल शर्मा की बेटी से तय हो चुकी है। इसी बीच मोहन लाल की बहन मय साजोसमान के आकर भेद खोल देती है कि वह शर्मा नहीं मिरासी है। गुलजारी लाल को मौका मिलता है वे मोहनलाल को जी भरकर जलील करते हैं लेकिन उनकी खुद की असलियत यह है कि वे बढ़ई से ब्राह्मण बने हैं। इन दोनों परिवारों की नयी पीढ़ी इन पाखण्डों से मुक्त होना चाहती है। 'दिनेश पाल जाटव उर्फ दिग्दर्शन' कहानी भी जाति–गोपन की कोशिशों के इर्द–गिर्द बुनी गयी है। 'कूड़ाघर' कहानी में अजब सिंह का परिवार किराये के मकान से इसलिये बेदखल कर दिया जाता है, क्योंकि मकान मालिक को उसकी जाति का पता चल जाता है। 'प्रमोशन' कहानी में मजदूर संगठनों के बीच पसरे जातिवाद का खुलासा किया है। सुरेश स्वीपर से प्रमोद होकर मजदूर बन जाता है। वह 'लाल झण्डा यूनियन' का मेम्बर बनकर उसकी गतिविधियों में जोर–शोर से शामिल होता है। वह कामरेड सम्बोधन से रोमांचित होता है। मजदूर–मजदूर भाई के नारे का अर्थ उसे तब समझ में आता है जब उसके हाथ से बँटने वाले दूध को कोई लेने नहीं पहुँचता है। लोगों की नजर में वह आज भी स्वीपर है। यहाँ एक बात उल्लेखनीय है कि दलितों में भी परस्पर ऊँच–नीच की भावना व्याप्त है। अन्य दलित भंगी को अस्पृश्य मानते हैं, यह विडम्बना है।

ओम प्रकाश वाल्मीकि यह समझते हैं कि प्रतिशोध लेने वाला यदि अपने पूर्ववर्ती जैसा हो जाता है। जातिवादी व्यवहार के बदले अगर जातिवादी व्यवहार किया जाता है तो उसका क्रम कैसे टूटेगा? यह बाबा साहब का मार्ग नहीं ब्राह्मणवाद का नया संस्करण है 'मुम्बई काण्ड' नामक कहानी में वाल्मीकि जी ने यही मुद्दा उठाया है। मुम्बई शहर का एक जागरूक कार्यकर्ता डा, अम्बेडकर की मूर्ति को अपमानित करने फिर अम्बेडकर समर्थकों पर गोली चलाये जाने से अत्यन्त व्यथित है वह बदला लेना चाहता है और विचार करता है कि गाँधी जी की मूर्ति को जूतों की माला पहनाये। वह इसको अंजाम देने रात्रि में अकेले जाता है रात्रि के सन्नाटे में उसे गाँधी जी की मूर्ति मासूमियत से भरी दिखाई पड़ती है वह रूक जाता है तभी उसमें अपमान व प्रतिशोध की भावना तीव्र हो जाती है। अखबारों की सुर्खियों व समाचारों में दिखाये गये रक्तरंजित चेहरे दिखाई देने लगते हैं। वह घृणा से मूर्ति को देखता है। मूर्ति के चेहरे पर उसे उपेक्षा भाव दिखाई देने लगा है। लेकिन कहानी का अंत यहीं नही होता। सुमेर का द्वंद देर तक चलता रहता है उसकी परिणिति इस कौंध में होती है कि 'मुम्बई में किसी ने मेरे विश्वास पर चोट की और मैं यहाँ किसी की आस्था पर चोट करने जा रहा हूँ।....नहीं मैं एक गुनाह का बदला दूसरे गुनाह से नहीं लूँगा''।

छतरी कहानी में चौधरी का कथन दलित बालक के प्रति सोच को उजागर करता है–''बेकार की बात मत करो। इसे किसी काम धन्धे में लगा .. दो रोटी कमायेगा ... पढ़ लिख कर क्या करेगा न घर का रहेगा न घाट का।''11

प्रहलाद चन्द दास की कहानी 'एकै मटिया एक कुम्हारा'' जाति अभिमानी ब्राह्मणों के पाखण्ड का कच्चा चिट्ठा खोलती है। साथ ही जाति व्यवस्था की त्रासदी से गुजरते परिवार की मनःस्थिति पर प्रकाश डालती है। कहानी का मुख्य पात्र धर्मान्तरण करना चाहता है क्योंकि वह शेड्यूल्ड कास्ट बच्चा पैदा करना नहीं चाहता है।

वस्तुतः जातिगत कट्टरतावाद खतरनाक है चाहे वह ब्राह्मणवाद हो या दलितवाद। दलित साहित्यकारों का उद्देश्य जाति व्यवस्था को उच्छेद कर समतामूलक समाज की स्थापना होना चाहिये लेकिन जहाँ वे अपनी जाति को मजबूत बनाकर प्रतिशोध के स्तर पर खड़े होते हैं, वहाँ समता की स्थापना अकल्पनीय है। उदय प्रकाश के उपन्यास 'पीली छतरी वाली लड़की'' में जाति को उभारने से होने वाली समस्याओं की ओर इशारा किया गया है। कहानी का नायक जो दलित है अपनी ब्राह्मण प्रेमिका अंजली जोशी से शारीरिक सम्बन्धों में बलात्कार की स्थिति में पहुँच जाता है क्योंकि वह अपने मित्र हेमंत बरूआ द्वारा जातिगत स्तर पर सक्रिय कर

दिया जाता है। इस 'एबाउट टू रेप' की स्थिति में भी अंजली अपना प्रेम नही छोड़ती। यहाँ जाति के स्तर पर प्रेमी हावी हो जाता है। वस्तुतः जातिगत समस्या का हल जाति को उकसाने में नहीं आपसी प्रेम में है।

हिन्दी के दलित–चेतना के उपन्यास में छप्पर (जय प्रकाश कर्दम), जस तस भई सवेरे (सत्य प्रकाश), मुक्ति पर्व (मोहनदास नैमिशराय), घर की राह (इन्द्र बसावड़ा), जूठन (ओम प्रकाश वाल्मीकि का आत्मकथात्मक उपन्यास) प्रमुख हैं। दलित कहानी लेखकों में दयानन्द बटोही (सुरंग), सुशील टाकभौर (टूटता वहम), सूरजपाल चौहान (हैरी कब आयेगा), ओम प्रकाश वाल्मीकि (पुनर्वास), कुसुम वियोगी (चार इंच की कलम) आदि चर्चित हैं।

आज दलित साहित्य ने साहित्य के केन्द्रीय आख्यान के रूप में वर्णविरोधी आख्यान को स्थापित करने का प्रयत्न किया है। जिससे दलित अस्मिता को सफलतापूर्वक रेखांकित किया जा सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि दलित साहित्यकार अपनी मौलिकता पर जोर देते हुए अपने मूलाधार से जुड़े रहें।

निष्कर्ष

निःसन्देह देश में जातिवाद की समस्या भयावाह है। आज दलित साहित्य में जड़–रूढ़ जातिवादी सामाजिक संरचना को बदलने की शक्तिनिहित है। सदियों से शोषण का शिकार दलित वर्ग संघर्षरत है कि वह भी स्वतंत्रता, समानता व सम्मान को प्राप्त कर सके। जबकि प्रकृति ने किसी के साथ भेद–भाव नहीं किया तो समाज में भेदभाव क्यों? आज दलित साहित्य सहजता की ओर बढ़ रहा है। समाज में शोषित वर्ग की समस्याओं को सामने लाने वाले दलित साहित्य का भविष्य उज्जवल है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005
2. प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005
3. वाड्.मय – दलित विशेषांक, अंक 8 जनवरी–मार्च 2006 पृ . 124
4. प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005
5. प्रतियोगिता दर्पण, नवम्बर 2005
6. प्रेमचन्द्र – मानसरोवर भाग – 1 पृ. 125
7. कर्मभूमि – प्रेमचन्द्र भाग – 2 पृ. 19
8. दिव्या – यशपाल
9. शैलेश मटियानी की सम्पूर्ण कहानियाँ –3, प्रकल्प प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ . 168
10. आजकल – फरवरी 2007
11. छतरी – ओम प्रकाश वाल्मीकि, कथादेश नवम्बर 2006

डॉ. अरजण वी. नंदाणीया
एम.ए., पीएच.डी.